**ओ३म्**

**‘मूर्तिपूजा और महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 हमारा देश अनेक मत-मतान्तरों का देश है। प्रायः सभी मत ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि संसार में ईश्वर के एक होने पर भी सभी मतों में उसके स्वरूप की मान्यतायें व उपासना पद्धतियां भिन्न-भिन्न हैं। इसका कारण क्या है? क्या सभी मतों की ईश्वर के स्वरूप, गुण-कर्म-स्वभाव आदि के बारे में सभी मान्यतायें उचित व सत्य हैं? हमारे वैदिक मान्यताओं के अध्ययन, चिन्तन व मनन के अनुसार वेदेतर मतों की मान्यतायें उचित व सत्य न होकर ईश्वर का पूर्ण सत्य स्वरूप केवल वेदों एवं वैदिक साहित्य में ही उपलब्ध होता है। इनका सत्य स्वरूप वही है जैसा कि वेद व वैदिक साहित्य के ग्रन्थों उपनिषद, दर्शन आदि में पाया जाता है। मत-मतान्तरों में ईश्वर का जो स्वरूप व उपासना पद्धतियां उपलब्ध होती हैं वह उन-उन मतों के प्रवर्तकों के देश, काल एवं उनके अपने निजी ज्ञान मुख्यतः अल्पज्ञता व विचार शक्ति के अनुसार सत्यासत्य का मिश्रण है। जिन दिनों ये मत अस्तित्व में आये उन दिनों संसार में ज्ञान व विज्ञान अपनी पतनावस्था व विकासशील अवस्था में थे। इसी कारण सभी मतों में जिनमें हमारे देश का पौराणिक मत, बौद्ध व जैन मत आदि भी सम्मिलित हैं, सभी इससे प्रभावित हुए हैं। खोज व अनुसंधान करने पर ज्ञात होता है कि ईश्वर का सत्य स्वरूप केवल वेदों में ही पाया जाता है जिसका उल्लेख उपनिषदों, मनुस्मृति व दर्शनों आदि ग्रन्थों के साथ कुछ कुछ गीता, बाल्मिीकी रामायण एवं महाभारत में भी पाया जाता है। ईश्वर के सम्बन्ध में उन दिनों स्पष्ट ज्ञान न होने के कारण अज्ञानता से ही मूर्तिपूजा का प्रचलन हुआ। आज के इस लेख में हम मूर्तिपूजा पर महर्षि दयानन्द के विचारों को प्रस्तुत कर रहें हैं जो सत्य की कसौटी पर पूर्णतया खरे हैं और साथ ही सार्वकालिक व सार्वभौमिक भी हैं।

महर्षि दयानन्द जी ने अपने समय में जो धार्मिक अध्ययन व अनुसंधान किये, उसमें उन्होंने पाया कि मूर्ति पूजा जैन मत से आरम्भ हुई है। जैनियों ने मूर्तिपूजा कहां से चलाई तो उसका कारण यही है उन्हें सत्य वैदिक ईश्वर पूजा वा ईश्वरोपसाना का ज्ञान न होने से अपनी अल्पज्ञता व अज्ञानता से चलाई। जैनियों की इस धारणा कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति को देख कर अपने जीव वा आत्मा का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है, इसका उत्तर देते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि जीव चेतन है और मूर्ति जड़ है। क्या मूर्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा? महर्षि दयानन्द ने दूसरा प्रश्न किया है कि शाक्त मतानुयायी आदि ने मूर्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया क्योंकि जैनियों की मूर्तियों के सदृश वैष्णव-शाक्त आदि की मूर्तियों नहीं है। इसका समाघान करते हुए महर्षि दयानन्द कहते हैं कि यदि शाक्त आदि जैनियों के तुल्य मूर्तिंयां बनाते तो, समानता होने के कारण, जैनमत में मिल जाते अर्थात् इनमें व जैनमत में कोई अन्तर ही न होता। इसलिये जैनों की मूर्तियों से विरूद्ध अपनी मूर्तियां बनाई, क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम और इन से विरोध करना मुख्य उनका अर्थात जैनमतानुयायियों का काम था। जैसे जैनों ने मूर्तियां नंगी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं, उन से विरूद्ध वैष्णवादि ने यथेष्ट श्रृंगारित व स्त्री के सहित रंग-रास-भोग विषयासक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख, घण्टा, घरियार आदि बाजे नहीं बजाते। ये वैष्णव व शाक्त लोग बड़ा कोलाहाल करते हैं। तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इन की लीला में आ फंसे **और व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी से बहुत से असम्भव गाथायुक्त ग्रन्थ (18 पुराणादि) बनाये। उनका नाम पुराण रखकर कथा भी सुनाने लगे और फिर ऐसी-ऐसी विचित्र माया रचने लगे कि पाषाण की मूर्त्तियां बनाकर गुप्त कहीं पहाड़ या जंगलादि में धर आये वा भूमि में गाड़ दी। पश्चात् अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझ को रात्रि को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम या लक्ष्मी, नारायण और भैरव, हनुमान आदि ने कहा है कि हम अमुक-अमुक ठिकाने हैं। हम को वहां से ला, मन्दिर में स्थापन कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनोवांछित फल देवें।**

अब **‘आंख के अन्धे और गांठ के पूरे’** लोगों ने पोप जी की लीला सुनी तब तो सच ही मान ली और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूत्र्ति कहां पर है? तब तो पोप जी बोले कि अमुख पहाड़ वा जंगल में है, चलो मेरे साथ दिखला दूं। तब तो वे अन्धे उस धूत्र्त के साथ चल के वहां पहुंच कर देखा। आश्चर्य होकर उस पोप के पग में गिर कर कहा कि आपके ऊपर इस देवता की बड़ी कृपा है। अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देवेंगे। उस में इस देवता की स्थापना कर आप ही पूजा करना और हम लोग भी इस प्रतापी देवता के दर्शन पर्सन करके मनोवांछित फल पावेंगे। **जब एक ने लीला रची तब तो उस को देख सब पोप लोगों ने अपनी जीविकार्थ छल कपट से इसी प्रकार से मूर्त्तियां स्थापन कीं।**

मूर्तिपूजा के पक्ष में पौराणिक यह प्रश्न करते हैं कि जब परमेश्वर निराकार है तो वह ध्यान में नहीं आ सकता। अतः इसलिये अवश्य मूर्त्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करे, यदि वह मूर्त्ति के सम्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं तो इसमें क्या हानि है? इस प्रश्न का उत्तर महर्षि दयानन्द अपने विस्तृत वैदिक ज्ञान के आधार पर देते हुए बताते हैं कि जब परमेश्वर निराकार व सर्वव्यापक है, तब उस की मूर्त्ति ही नहीं बन सकती **और जो मूर्त्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिन में ईश्वर ने अद्भुत रचना की है, क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी व पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्त्तियां कि जिन पहाड़ आदि से वे मनुष्यकृत मूर्त्तियां बनती हैं, उन को देख कर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता?** जो तुम कहते हो कि मूर्त्ति के दखने से परमेश्वर का स्मरण होता है, तुम्हारा सह कथन सर्वथा मिथ्या है और जब वह मूत्र्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी व जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहां मुझे कोई नहीं देखता, इसका दण्ड उसे कर्मफल व्यवस्था से नहीं मिलेगा, इसलिये वह अनर्थ करे विना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्त्तिपूजा करने से सि़द्ध होते हैं।

आगे महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि अब देखिये ! जो पाषाणादि मूर्तियों को न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरूष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सब के बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जान कर एक क्षण मात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जान के कुकर्म करना तो दूर किन्तु मन से कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, कि जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामी ईश्वर के न्याय से विना दण्ड पाये कदापि न बचूंगा। नामस्मरण मात्र से स्मत्र्ता को कुछ भी फल नहीं होता जैसा कि मिशरी-मिशरी कहने से मुंह मीठा और नीम-नीम कहने से कडुवा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने ही से मीठा वा कडुवापन जाना जाता है। इसी प्रकार से सत्य नाम के स्मरण के साथ तथावत् कर्म करना भी परमावश्यक है।

इस पर पौराणिक पक्ष का उल्लेख कर उन्होंने लिखा है कि क्या नाम लेना वा स्मरण करना सर्वथा मिथ्या है और सर्वत्र पुराणों में तो नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है? इसका उत्तर वह देते हुए महर्षि दयानन्द जी कहते हैं कि नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं है। जिसप्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति झूठी है। तुम्हारी रीति वेद के विरूद्ध है। सत्य व वेदविहित रीति के अनुसार नामस्मरण इस प्रकार से करना चाहिये--**जैसे “न्यायकारी” ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इस का अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है वैसे उस का ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।** मूर्तिपूजा के समर्थन में पौराणिक सनातनधर्मी लोग एक यह तर्क भी देते हैं कि हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उस ने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम, कृष्णादि अवतार लिये। इस से उसकी मूर्ति बनती है, क्या यह भी बात झूठी है? महर्षि दयानन्द इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि हां-हां झूठी है। क्यांकि ‘अज एकपात्’, ‘अकायम्’ इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्ममरण और शरीरधारणरहित वेदों में कहा है तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता क्योंकि जो आकाशवत् सर्व़व्यापक, अनन्त और सुख-दुःख व दृश्यादि गुणरहित है वह एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है? आता जाता है वह है कि जो एकदेशीय अर्थात् एक स्थान पर हो तथा अन्यत्र न हो। और जो अचल, अदृश्य, जिस के विना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उस का अवतार कहना, जानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उस क पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है।

इसी प्रकार से महर्षि दयानन्द ने मूर्तिपूजा से सम्बन्धित अन्य सभी प्रकार के प्रश्नों को स्वयं प्रस्तुत कर उनका युक्ति व प्रमाणों सहित खण्डन किया है। उनके इस विद्वतापूर्ण मानवहितकारी कार्य को कोई भी शुद्ध हृदय का व्यक्ति पढ़कर जान व समझ सकता है। वह अपने विवेक व आत्म प्रेरणा से मूर्तिपूजा सदा सर्वदा के लिए छोड़कर सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, कर्मफल दाता, मोक्ष प्रदाता ईश्वर की उपासना आदि व वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय में स्वयं को अर्पित कर जीवन के उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति में सफलता देने वाले अन्य साधनों को प्रयोग में लाकर अपने जीवन को सफल कर सकता है। हम आशा करते हैं कि पाठक महर्षि दयानन्द जी के मूर्तिपूजा विषयक तर्कों को राग-द्वेष-अज्ञान-स्वार्थ आदि से मुक्त होकर शुद्ध मन से विचार करेंगे और उनके ग्रन्थों सहित वेदादि का अध्ययन कर सत्य को अपनायेंगे और असत्य का परित्याग करेंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**